प्रेमचंद के पात्र आज भी जीवित हैं

31 जुलाई, प्रेमचंद-जयंती

————————————————————-

किसी भी उदार, गतिशील एवं जागरूक समाज में विमर्श और विश्लेषण सतत ज़ारी रहना चाहिए। परंतु भारतीय मनीषा ने उससे एक क़दम आगे बढ़ते हुए भिन्न-भिन्न मतों के बीच एकत्व या समन्वय साधने की अद्भुत कला विकसित की है। यह कला या जीवन-दृष्टि ही हमारी थाती है। हमारे अध्ययन-अध्यापन, चिंतन-मनन, विमर्श-विश्लेषण का लक्ष्य ही रहा है कि सृष्टि के अणु-रेणु में व्याप्त एकत्व की भावना या सार्वभौमिक चेतना की अनुभूति करना। इसीलिए हमने "एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति' (एक ही सत्य विद्वान कई तरह से अभिव्यक्त करते हैं) के विचार-मंत्र की उद्घोषणा की। इसमें दूसरे के सत्य के प्रति सहिष्णुता ही नहीं, समादर है। सहज, खुला स्वीकार है।

परंतु बीते कुछ दशकों से हमारे सार्वजनिक विमर्श और विश्लेषण का ध्येय चराचर में व्याप्त एकत्व को खोजने की बजाय और विभेद पैदा करना हो चला है। परस्पर विरोधी स्थितियों-परिस्थितियों के मध्य समन्वय व संतुलन साधने की बजाय संघर्ष उत्पन्न करना हो गया है। निहित स्वार्थों एवं दलगत राजनीति के कारण हम समाज को अलग-अलग वर्गों-खेमों-साँचों में बाँटते चले जा रहे हैं। विभाजनकारी मानसिकता एवं भेद-बुद्धि की पराकाष्ठा तब और देखने को मिलती है, जब हम अपने महापुरुषों, स्वतंत्रता-सेनानियों, साहित्यकारों और कलाकर्मियों को भी जाति-वर्ग-संप्रदाय विशेष से जोड़कर देखते हैं। संत, साहित्यकार, समाज-सुधारक या विविध क्षेत्र के मान्य महापुरुष किसी जाति-वर्ग या संप्रदाय विशेष का प्रतिनिधित्व नहीं करते। वे सबके और सब उनके होते हैं। इसी में उनका वैशिष्ट्य है। परंतु दुर्भाग्यपूर्ण यह कि बौद्धिकता एवं वर्गीय चेतना के नाम पर आज तमाम साहित्यकारों-मनीषियों को भी संकीर्ण एवं संकुचित दायरे में आबद्ध किया जा रहा है।

31 जुलाई को हिंदी कहानी एवं उपन्यास के शिखर-पुरुष मुंशी प्रेमचंद की जयंती है। उनकी जयंती पर उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि कथित बौद्धिकता एवं वर्गीय चेतना के नाम पर उनके सृजन एवं सरोकारों को लेकर चलने वाले खंड-खंड चिंतन पर हम अविलंब विराम लगाएँ और उनके विपुल रचना-संसार को समग्रता में ग्रहण और स्वीकार करें। कोई भी साहित्यकार देश-काल एवं परिस्थितियों की उपज होता है। वह अपने देखे-सुने-भोगे गए यथार्थ का कुशल चितेरा होता है। उसका उद्देश्य अपनी रचनाओं के माध्यम से पाठकों का रंजन और उनकी चेतना का परिष्करण व उन्नयन होता है। प्रेमचंद भी इसके अपवाद नहीं हैं।

उनकी कतिपय कहानियों के आधार पर उन्हें दलित विरोधी या ब्राह्मण विरोधी बतलाना, उन्हें संप्रदाय-विशेष का पैरोकार या विरोधी सिद्ध करना सरासर अन्याय है। चाहे उनकी कहानी 'कफ़न', 'ठाकुर का कुँआ', 'पूस की रात', 'दूध का दाम' हो, चाहे उनके उपन्यास 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प' और 'गोदान' आदि- सभी में उन्होंने समाज के वंचित-शोषित-पीड़ित जनों के प्रति गहरी सहानुभूति प्रकट की है और न्याय, समता एवं भ्रातृत्व पर आधारित समाज-व्यवस्था की पैरवी की है। उनका यथार्थोन्मुखी

आदर्शवाद भारतीय चिंतन की सुदीर्घ परंपरा से उपजा जीवन-दर्शन था। जीवन के संघर्षों-थपेड़ों से जूझता मन अंत में बुराई पर अच्छाई, असत्य पर सत्य और अशुभ पर शुभ की विजय देखकर स्वाभाविक प्रसन्नता की अनुभूति करता है और प्रेमचंद की अपार लोकप्रियता एवं स्वीकार्यता का यह एक प्रमुख आधार है। यथार्थ के चित्रण के नाम पर आदर्श की नितांत उपेक्षा व अवमानना कदापि नहीं की जा सकती। समाज को सही दिशा में आगे बढ़ाने में सामाजिक-साहित्यिक-सांस्कृतिक आदर्शों की अपनी भूमिका होती है और हर समाज अपने लिए कुछ आदर्शों की रचना व स्थापना करता है। समाज के व्यापक एवं समग्र हितों की रक्षा के लिए उनका बने-बचे रहना आवश्यक होता है। खंडन-मंडन से अधिक सार्थक मौलिक उद्भावनाएँ होती हैं। और प्रेमचंद अपनी साहित्यिक जिम्मेदारी और सामाजिक आवश्यकता को भली-भाँति समझते थे।

उनकी जिस यथार्थवादी रचना 'कफ़न' के पात्र 'घीसू' और 'माधो' की संवेदनहीनता और उसकी जाति के उल्लेख को आधार बनाकर जिन कथित दलित चिंतकों- विचारकों ने प्रेमचंद को दलित विरोधी करार दिया है , उन्हें यह समझना-विचारना चाहिए कि उनकी इस कहानी का उद्देश्य ही समाज को यह समझाना है कि अभाव एवं गरीबी मनुष्य की सहज संवेदना को कुंठित और भोथरी कर देती है और वह अपनों के प्रति भी निर्मम और निष्ठुर हो उठता है। जिन दलित चिंतकों ने स्वानुभूति की पैरवी करते हुए सहानुभूति को खारिज़ किया है, वे शायद भूल गए कि मनुष्य की संवेदना का फ़लक व्यापक और विस्तृत होता है। जाति विशेष की वेदना-व्यथा को संवेदना के धरातल पर अनुभूत करने के लिए जन्मना उसी जाति का होना अनिवार्य नहीं। कहते हैं कि क्रौंच-युगल में से एक जब बाण से बिद्ध हुआ तो संसार के प्रथम कवि महर्षि वाल्मीकि के हृदय में जागृत करुणा से अनायास ही प्रथम श्लोक प्रस्फुटित हुआ। मनुष्य की संवेदना का विस्तार तो मूक और निरीह पशु-पक्षियों तक होता है। फिर अपनी ही तरह का हाड़-मांस से बना मनुष्य तो उसका साथी है, सहचर है। बल्कि संवेदना का यह विस्तार ही जीवन है और संकीर्णता ही मृत्यु है।

साहित्यकार नग्न-से-नग्न सत्य को भी सौंदर्य में आवेष्टित कर प्रस्तुत करता है। वह अपने ढ़ंग से 'सत्यं शिवम सुंदरम' की पुनः-पुनः स्थापना करता है। प्रेमचंद ने भी यही किया। उनकी कतिपय रचनाओं एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर उन्हें इस या उस खेमे में बाँटकर देखना उनके साहित्यिक अवदान को कम करके आँकना है। अपनी मान्यताओं, विश्वासों एवं पूर्वाग्रहों के पृष्ठ-पोषण के लिए किसी को वामपंथी या दक्षिणपंथी घोषित करने का हालिया चलन सत्य की राह खोजती चेतना को कमज़ोर करती है। शास्त्रार्थ की सनातन परंपरा वाले देश में विमर्श और विश्लेषण तो अबाध ज़ारी रहना चाहिए, पर उसके मूल में जोड़ने का भाव व ध्येय होना चाहिए, न कि तोड़ने का।

और ऐसी तमाम कोशिशों, आलोचनाओं या विमर्शों से प्रेमचंद की महत्ता या प्रासंगिकता कम नहीं हो जाती। वे जन-जन के उद्गाता हैं। उनका साहित्य अपने युग का प्रतिबिंब है। वे युग के साथ चले हैं और उन्होंने अपने युग एवं समाज का कायाकल्प भी किया है। वे स्वाधीनता और स्वराज के महागाथाकार हैं। उनमें महाकाव्यात्मक चेतना के दर्शन होते हैं। देश, समाज, संस्कृति से लेकर व्यक्ति-व्यक्ति की पीड़ा को उन्होंने मुखरित किया है। उनकी कथावस्तु, पात्र व संवाद हमें अपने जीवन से जुड़े जान पड़ते हैं। उनका राष्ट्र-भाव, संस्कृति-भाव, शोषण-दमन से मुक्ति-भाव, संप्रदायों में एकता-भाव, कृषि-संस्कृति, भारतीयता एवं लोकचेतना की रक्षा का भाव, उन्हें न केवल विशिष्ट बनाता है, अपितु कालजयी और

जन-मन का सम्राट भी बनाता है। सर्व साधारण के प्रति उनकी घनीभूत संवेदना और करुणा मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने का एक सफल सद्प्रयास है। प्रसिद्ध साहित्यकार एवं समालोचक डॉ रामविलास शर्मा के शब्दों में- "प्रेमचंद वाल्मीकि, वेदव्यास, तुलसीदास की परंपरा में आते हैं, इसलिए उनका साहित्य भी इन महाकवियों के समान युगों-युगों तक सार्थक बना रहेगा और अपने समय के मनुष्य, समाज और देश की आत्मा का उन्नयन करता रहेगा, उसे अंधकार से प्रकाश की ओर लाता रहेगा और अपनी प्रासंगिकता को अखंड रूप में बनाए रखेगा, क्योंकि मानवीय उत्कर्ष के अतिरिक्त साहित्य की अन्य कोई सार्थकता नहीं हो सकती।"

प्रणय कुमार
गोटन, राजस्थान